1938G Violation of Vows

Vrat Bhang ki maryada (In Jain Bandhu, 1938)

"व्रत-भंग की मर्यादा"

आचार्यों ने जहां कहीं भी व्रत ग्रहण करने के लिये कहा है, तो पहले यही उपदेश दिया है कि 'खूब सोच विचार करके व्रत ग्रहण करना चाहिये' इसका भाव यह है कि व्र.ग्रहण के पूर्ववर्ती विचारों के प्रवाह की भली भान्ति परीक्षा करके यह निश्चय करने का प्रयत्न करे—कि मेरे अनन्तानुबंधी और अप्रत्याख्यानावरण आदि कषायें शान्त हुई हैं या नहीं? यदि शान्त हुई हैं, तो किस हद तक मैं व्रत ग्रहण कर सकता हूं जिससे कि च्युत होने का अवसर न आवे, क्योंकि बिना पूर्वोक्त कषायों के शान्त हुए ग्रहण किया हुआ व्रत नियम से भंग होगा। इसके बाद आचार्यों का उपदेश है कि ग्रहण किये गये व्रत को प्रयत्न से पालन करना चाहिये। यहां प्रयत्न से भाव है—विवक्षित व्रत संबन्धी भावनाओं से, क्योंकि व्रतों के स्थिरीकरण के लिये ही भावनाओं का भाना आवश्यक बतलाया गया है। यदि इतने पर भी प्रमादवश, कषायवश या अन्य किसी कारण से व्रत-भंग हो जावे, तो उसे तुरन्त ही प्रायश्चित्त शुद्धिपूर्वक पुनः ग्रहण कर लेना चाहिये।

व्रतभंग के अनेक रूप शास्त्रों में दृष्टि होते हैं। कुछ आचर्य तो अतिचार और अनाचार ऐसे दो रूप बतलाते हैं और कुछ आचार्य अतिशय, व्यतिशय, अतीचार और अनाचार ऐसे चार भेद बतलाते हैं। दो भेद वालों की दृष्टि से व्रत की अपेक्षा रखते हुए भी जो व्रत का एकदेश भंजन हो जाता है उसे अतिचार कहते हैं और व्रत की अपेक्षा न रहते हुए जो व्रतभंजन होता है उसे अनाचार कहा गया है। जैसे अतिथिसंविभागव्रती आहारका समय उल्लंघन कर के आहार देने को साधु की प्रतीक्षा करता है। यहां पर यदि गृहजंजालों के कारण या अन्य किसी निमित्त वश वह आहार काल में साधु की प्रतीक्षा में खड़ा नहीं हो पाया है जो उस काल-उल्लंघन को 'कालातिक्रमण' नाम का अतीचार कहा जायगा। क्योंकि यदि उसे अपने व्रत की अपेक्षा न होती, तो क्यों वह समय बीत जाने पर भी प्रतीक्षा का उपक्रम करता। किन्तु जो दर्पवश या कषायवश हो कर साधु की आहारवेला की उपेक्षा करता है तो वैसी दशा में उसे 'अनाचार' कहा जायगा जिस का कि अर्थ यह होगा कि व्रत नष्ट हो गया अब उसे प्रायश्चित्त ले कर पुनः धारण करना चाहिये।

जिन आचार्यों ने व्रत-भंग के चार भेद किये हैं उनके अनुसार व्रत-भंग की मर्यादा निम्न प्रकार समझना चाहिये।

विवक्षित व्रत सम्बन्धी शुद्धि का जब तक केवल मन से उल्लंघन होता है किन्तु वाचिक या कायिक दृष्टि से उसका पालन होता रहता है, तब उस भंग को 'अतिक्रम' नाम से पुकारते हैं। जैसे साधुगणों के संकल्पित अपने निमित्त बनाये गये भोजन का त्याग बताया गया है। यदि कोई श्रावक आहार काल से पूर्व आकर इस प्रकार भाव व्यक्त करे कि आज भगवन् मैं ने आहार दान के लिये अमुक अमुक प्रकार का अन्न सम्पन्न किया है आदि।

और उक्त वचन सुन कर साधु भी उसे ग्रहण करने की मन में इच्छा करे तो इसे 'अतिक्रम' नाम का दोष या व्रत-भग कहेंगे।

शील की रक्षा में सहायक साधनों की मर्यादा उल्लंघन करने को 'व्यतिक्रम' नाम का दोष कहते हैं अथवा व्रत-भंग कारक मार्ग में अग्रेसर होने को भी 'व्यतिक्रम' कहते हैं जैसे वही साधु उस संकल्पित आहार को ग्रहण करने के लिये मार्ग में गमन करने लग जाय। विषयोन्मुखी प्रवृत्ति को अतिचार कहते हैं। जैसे वही साधु उसी संकल्पित आहार को ग्रहण करने के लिये नवधा भक्ति करा कर अन्न-ग्रास ग्रहण करने के लिये हाथ पसार कर खड़ा हो जाय।

इन्द्रिय विषयाशक्ति को अनाचार कहते है जैसे वही साधु संकल्पित आहार को श्रावक द्वारा दिये जाने पर खाने लग जाय।

उक्त क्रम से यह बात स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाती है कि उत्तरोत्तर व्रत-भंग की मर्यादा बढ़ती गई है और इसी लिये पाप दोष भी गुरुतर होता गया है।

इस निरूपण का तात्पर्य यही है कि हम सदा ही अपनी विचार धारा को स्वच्छ रखने का प्रयत्न रखें तभी हमारा स्वीकृत व्रत समुचित दशा में स्थिर रह सकता है।

—हीरालाल न्यायतीर्थ